संस्थापक – सम्पादक : स्व. श्री महेन्द्रकुमार
कार्यकारी सम्पादक : चिन्मय मिश्र
सप्रेस आलेख : 17 : 2012–13
दिनांक : 11–05–2012
प्रकाशनार्थ
फोन एवं फैक्स : (0731) 2401083

सर्वोदय प्रेस सर्विस बुलेटिन
साप्ताहिक सर्वोदय समाचार विचार सेवा
29, संवाद नगर, नवलखा, इंदौर – 452001 (म.प्र.)
E.Mail - indoresps@gmail.com
sps2005@dataone.in

(कृपया 14 मई 2012 के पूर्व प्रकाशित न करें)

पशुपालन से ही बचेगी खेती

✍ बाबा मायाराम

खेती में गाय व बैल के योगदान को भुलाकर हमने पारम्परिक खेती के लिए मुसीबत मोल ले ली है। दुनियाभर के कृषि विशेषज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि औद्योगिक (मशीनीकृत) खेती से उत्पादकता लगातार घट रही है। इसका विकल्प यही हो सकता है कि पशुओं के माध्यम से होने वाली खेती को अधिकाधिक प्रोत्साहित किया जाए। हमारे देश में पशुपालन को डेयरी उद्योग का पर्याय मान लेने से भी नई समस्याएं जन्म ले रही हैं। – का. सं.

भारत समेत सारी दुनिया में आज भी खेती और पशुपालन ही सबसे ज्यादा रोजगार देने वाले क्षेत्र हैं। ग्रामीण अर्थव्यवस्था केवल खेती–किसानी से ही नहीं, पशुपालन और छोटे–छोटे लघु–कुटीर उद्योग व लघु व्यवसायों से संचालित होती रही है। मवेशी एक तरह से लोगों के 'फिक्स्ड डिपाजिट' हुआ करते थे, जिन्हें बहुत जरूरत पड़ने पर वे बेच भी देते थे।

लेकिन आम तौर पर गाय–बैल और मनुष्य के आपसी स्नेह और प्यार की कई कहानियां अब भी प्रचलन में हैं। उनके प्रति गहरी संवेदनशीलता भी देखने में आती थी। उन्हें बड़े लाड़–प्यार से पाला पोसा जाता था। मध्यप्रदेश स्थित पिपरिया के मूलचंद दादा कहते है, 'हम मवेशियों को अपने बच्चे की तरह पालते– पोसते हैं। उन्हें भी मनुष्यों की तरह बुढापे में खूंटे पर बांधकर खिलाना चाहिए।'

बैलों के प्रति विशेष प्रेम तब दिखाई देता है जब उन्हें दीपावली के समय रंग–बिरंगी फीते, गेंठा, मुछेड़ी, नाथ और पट्टों से सजाया जाता है। मढ़ई–मेलों में लोग बैलगाड़ी से सपरिवार जाते हैं। नर्मदा नदी के किनारों के मेलों में सजे बैलों की छटा निराली दिखती थी। गाय–बैल अपने आपको ऐसा ढाल लेते हैं कि कई तो खुद ही खेतों या जंगल में चरकर घर लौट आते हैं। उन्हें लाने–ले जाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। अगर वे कहीं दूर हों तो उनके गले की टपरी या ढूने की आवाज सुनकर उनको हांक कर घर ले आते हैं। गाय की पूजा की जाती है। उन्हें अनाज खिलाया जाता है। यानी गाय–बैल को समान रूप से सम्मान मिलता था।

लेकिन कुछ समय से दुधारू पशुओं से अधिक दूध निचाड़ने की घातक प्रवृत्ति देखने में आई है और इसके लिए क्रूर तरीके भी अपनाए जा रहे हैं। अधिक दूध उत्पादन और नस्ल सुधारने के नाम पर जो प्रयोग किए जा रहे हैं उनके हानिकारक नतीजे सामने आ रहे हैं। इससे हमारी उन देशी नस्लों की उपेक्षा हुई है, जो यहां के मौसम व स्थानीय उपलब्ध चारे से बिना खर्च से अपनी खुराक प्राप्त कर लेती थी। इसके स्थान पर ऐसी नाजुक नस्लें लाई गई जो यहां ज्यादा परवरिश मांगती हैं।

प्राकृतिक खेती करने वाले राजू टाइटस कहते हैं कि परंपरागत पशुपालन खेती के लिए अच्छा था। उससे खेत के लिए उर्वर गोबर खाद भी मिलती थी और दूध भी और फसल के ठंडल या भूसा से उसका पेट भी भर जाता था। लेकिन आजकल जो बड़े पैमाने पर डेयरी का धंधा पनपा है उससे आसपास के पेड़ भी काटे जा रहे हैं। गायों से ज्यादा दूध निचोड़ने के लिए इंजेक्शन का इस्तेमाल हो रहा है और बूढी होने पर बूचडखाने को बेचा जा रहा है। इसे उचित नहीं ठहराया जा सकता।

बच्चे भी करते थे देखभाल – गाय–बैल को नहलाने – धुलाने से लेकर चराने – पानी पिलाने का हर काम जिम्मेदारी से किया जाता था। खासकर महिलाएं और बच्चे मवेशियों की देखभाल में मदद करते थे। महिलाएं मवेशियों को बांधने के कोठा या सार की साफ–सफाई, भूसा–चारा डालना आदि का काम करती थीं। जबकि बच्चे उन्हें घास या भूसा डालने से लेकर पानी पिलाने का काम करते थे। अब भी जिन असिंचित, जंगलपट्टी व मिश्रित खेती वाले क्षेत्रों में पशुपालन होता है वहां बैलों से जुताई की जाती है।

खेती और पशुपालन एक दूसरे के पूरक हैं। इसका उदाहरण है राजस्थान से आने वाले घुमंतू पशुपालकों की भेड़–बकरियों व ऊंटों को किसान अपने खेतों में चरने की इजाजत देते हैं जिससे खेत उर्वर बने और उनका पेट भी भरे। यही घुमंतू पशुपालक पशुओं की अच्छी नस्ल उपलब्ध कराने में विशेष भूमिका निभाते थे।

लेकिन अब पशुपालन खत्म हो रहा है। प्रबुद्ध साहित्यकार व शिक्षाविद् कश्मीर उप्पल कहते हैं कि तवा बांध बनने के बाद गांवों के तालाब खत्म हो गए। नदियां भी खत्म हो रही हैं। पड़ती या उसर भूमि भी अब नहीं बची है। जिससे पशुपालन कम हो रहा है। बबूल और बेर के पेड़ भी खत्म हो रहे हैं जिनकी पत्तियां बकरियां चरती थीं। इन पेड़ों पर घोंसले बनाकर रहने वाले पक्षी भी बसेराविहीन हो गए हैं।

पहले गांव में सभी घरों के मवेशियों को चराने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाता था। एक साथ जो पशु चरने जाते थे उसे नार कहते थे। बदले में उस व्यक्ति को हर घर से अनाज मिलता था, जो मवेशी चराता था। यह परंपरा तवा कमांड में खत्म हो रही है क्योंकि अब मवेशियों को चराने के लिए जगह ही नही बची है।

हल–बैल की जगह ट्रेक्टर से जुताई से मिट्टी भी सख्त (भट्टल) हो रही है। जमाडा गांव के जीवनसिंह कहते हैं कि अगर गीले खेत में से एक भैंस निकल जाए तो जहां–जहां उसके खुरों के निशान बन जाते हैं, वहां–वहां दाने नहीं उगते। फिर तो अब ट्रेक्टर से जुताई की जा रही है। उसका वजन तो बहुत ज्यादा होता है। इससे हमारी जमीन कड़ी हो रही है। हल से जुताई से यह समस्या नहीं आती थी।

कुल मिलाकर, खेती और पशुपालन का रिश्ता आज टूट रहा है। लेकिन अगर इसको बरकरार रखा जाए तो न केवल हमें भूमि को उर्वर बनाने के लिए गोबर खाद मिलेगी बल्कि बड़ी आबादी को रोजगार भी मिलेगा। पशु शक्ति के बारे में कई विशेषज्ञ व वैज्ञानिक भी यह मानने लगे हैं कि यह सबसे सस्ता व व्यावहारिक स्त्रोत है। मशीनीकरण से ग्लोबल वार्मिग की समस्या बढेगी, जो आज दुनिया में सबसे चिंता का विषय है। कुछ किसानों ने खेती में पशुओं के महत्व को देखते हुए फिर से बैलों की खेती करना शुरू भी कर दिया है। हालांकि यह प्रयास छुट–पुट हैं, लेकिन इन्हें सही दिशा में उठाया गया सही कदम कहा जा सकता है।**(सप्रेस)**

(यह आलेख इंक्लूसिव मीडिया फैलोशिप 2011 के अध्ययन का हिस्सा है।)

परिचय – ☐ **श्री बाबा मायाराम स्वतंत्र लेखक हैं।**

नोट : लेख का उपयोग होने पर कतरन एवं पारिश्रमिक की राशि **'सर्वोदय प्रेस सर्विस'** के नाम भेजें।